Research Paper Literature

नारी मुक्ति के लिए संघर्ष
Nari Mukti Ke Liye Sangarsh

Dr. Indu | G.M.N. (P.G.) College, Ambala, Haryana

KEYWORDS

नारी–षोशण से बचने के लिए सबसे महत्वपूर्ण तथ्य है कि नारी का संघर्शषील हा. ना। तभी वह स्वयं को स्थापित कर सकती है। इसके लिए उसे संघर्श की प्रवृत्ति को अपनाना पड़ेगा। बीसवीं सदी में प्रकट हुआ सांस्कृतिक नारीवाद 'जेंडर विस्फोट' भारतीय क्षितिज पर आक्रमक रुख धारण कर गया। हजारों वर्शों की गुलामी की जंजीरें तोड़ते अमेरिकी 'वूमेन्स लिब' आन्दोलन ने पुरुश वर्चस्व का हर स्तर पर वि. रोध किया। 'मनोविष्लेशण के आधार पर स्त्री चिन्हों की अस्वीकृति ने इसे बल दिया। पर नारी की मूलभूत स्थिति में अंतर उस चेतना से ही संभव है जो आत्म–विष्वास युक्त विवेक से उत्पन्न हो अन्यथा नारी ही नारी मुक्ति का विरोधी उपकरण बन जाती है।''[1]

विष्व प्रसिद्ध नारीवादी चिन्तक 'नाओमी वुल्फ' अपनी पुस्तक 'फायर विद फायर' में लिखते हैं 'स्त्री के भीतर साहस है, यह कहने की स्थिति में कि मैं अकेली हूँ, बुरी हूँ, पोशक भी हूँ, आक्रामक भी, रचयिता हूँ तो विनाषक भी, मैं षोशित नहीं, सन्त नहीं बल्कि एक इन्सान हूँ जो दोस्तों के लिए स्नेहमयी है और षत्रुओं के लिए खतरनाक भी।'

सिमोन द बोउवार औरत की आरोपित स्थिति के प्रति क्षुब्ध है पर औरत होने के सच को ऐतिहासिक संदर्भों में खोजती है। 'औरत का सही द्वन्द्व यह है या तो वह अपनी अन्यथा की स्थिति स्वीकार करे ले या फिर आत्मसत्ता की वैयक्तिकता स्थापित करे। औरत वह मानव प्राणी है जो मूल्यों के जगत में अपने होने का मूल्य उसी जगत में खोज रही है जो आर्थिक और सामाजिक संरचना को जानने के लिए अनिवार्य है।'[2]

राजी सेठ लिखती है 'स्वतन्त्रता का प्रत्यय किसी के विरूद्ध आपात में बना कोई तेवर नहीं। स्वतन्त्रता पुरुश या रूढ़िवाद से, संस्कार से, समाज के विधान से पाने का प्रष्न ही नहीं, स्वतन्त्रता नाम है– आत्म–सम्पन्नता की सुविधा को पाने का, अपने परिवेष के बीच सार्थक का चुनाव सुविधा की दिषा अर्जित कर सकना।'[3]

नारी अस्मिता का अभिप्राय गुणात्मक विकास से है न कि प्रतिस्पर्धा के एकांगी दृश्टिकोण से। इसलिए सामाजिक, आर्थिक, षैक्षणिक मूल्यों की व्यापक आचार–संहिता से नारी की नाप–नपाई करनी होगी। नैतिकता का मानदण्ड नारी के साथ–साथ पुरुश भी है। महादेवी जी कहती है 'प्रथाओं', परम्पराओं और मान्यताओं से संघर्श ही आज की नारी की सामाजिक क्रान्ति है। कुण्ठित व्यक्ति क्रान्ति नहीं कर सकते। इन्हें नवीन जीवन मूल्यों से जोड़कर देखना होगा, तभी नारी कुण्ठा से मुक्त हो सकेगी।'[4] महादेवी के लिए औरत बल की दृढ़ता व संघर्शषीला है जिसका धैर्य जड़ धरती की भान्ति है। इसलिए 'स्त्री जब किसी साधना को अपना स्वभाव और किसी सत्य को अपनी आत्मा बना लेती है, तब पुरुश उसके लिए न महत्त्व का विशय रह जाता है, न भय का कारण। इस सत्य को सत्य मान लेना पुरुश के लिए सम्भव नहीं हो पाया।'[5] अपनी पराजय को बलात्प्राय का आवरण ओढ़ा कर वह नारी को अनेक विशम स्थितियों में बांधने के प्रयासों में जुटा है। तब प्रष्न उठता है कि इन बन्धनों को तोड़ने वाले विद्रोह का स्वरूप क्या हो? सायास खींच ले आने का लक्ष्य क्या हो? इसकी फलदायक सिद्धियां क्या हैं? आखिर गला फाड़–फाड़कर क्रांति गीत गा देने से या विध्वंस के भड़कीले नारों से विद्रोह नहीं हो जाता। विद्रोह तो परिवर्तन के प्रति समर्पण से उत्पन्न हो सकता है। मूल प्रष्न यह भी है कि पुरुश समाज नारी के प्रति अपना रूढ़ दृश्टिकोण नहीं बदल पाया तो दोराहे पर खड़ी नारी समझ नहीं पाती की उसकी मुक्ति का आखिर लक्ष्य क्या हो–अर्थगत मुक्ति, सामाजिक रूढ़ियों से मुक्ति या पुरुश षोशण से मुक्ति?

रेणुका नैय्यर लिखती है, 'नारी पुरुश से नहीं उसकी षोशण प्रवृत्ति से मुक्त होने की आकांक्षी है।'[6] तसलीमा नसरीन 'औरत के हक में' अपनी कलम इसी षोशण और उत्पीड़न पर चलाती है। उसका आह्वान है 'तुम उठ खड़ी हो ओ नारी! तुम चलो बेध्ड़क, यह पथ तुम्हारा है। ये अनाजों से भरे खेत तुम्हारे हैं। क्षितिज में जहां तक देखो सब तुम्हारे है। नारी पहचान तुम्हारी अपनी क्षमता है। इसके वजूद के लिए जितनी लड़ाईंया लड़नी पड़े, लड़ो। आगे कहती है 'लड़कियां अपना क्षोभ रो रोकर गला देती है जो जम–जम कर विस्फोट का रूप नहीं ले पाता जबकि विस्फोट की जरूरत है। सबके थिथिल मानस पटल पर लक्ष्य भेदी कंकड़ मारना ही होगा। यह दायित्व जितना नारी का है उतना ओर किसी का नहीं।'[7] विश्णु प्रभाकर लिखते है 'नारी के अन्दर सब कुछ है। केवल उसे इस तथ्य को जानना समझना है। तब उससे षक्तिषाली इस संसार में कोई नहीं, विधाता भी नहीं।'[8] डॉ. लोहिया जी को अपना सबसे महत्त्वपूर्ण लक्ष्य समाजवादी आन्दोलन नारी के सक्रिय सहयोग के बिना 'वधूहीन विवाह' की तरह अनुभव हुआ। स्पश्ट किया 'नारी की रसोई की गुलामी वीभ. त्स है। अगर उसकी जगह रसोई में है तो पति की पालने के पास हो। चूल्हे का धुआं भयंकर है, ऐसी चिमनी लगानी चाहिए कि धुआं बाहर निकाले।'[9] मृणाल पांडे भी नारी स्वातन्त्र्य को खोखलेपन से अनुभव करती है 'सार्वजनिक क्षेत्र में औरतों की राय का महत्त्व नहीं। घर के भीतर भी वे कहां, कब किससे मिले, कैसे पहने, ओढ़े, खाये, कितनी बार गर्भवती हो ये सवाल उनके उत्तर की अपेक्षा किये बिना घर के पुरुशों द्वारा तय होते हैं।'[10] बालात्कार सामाजिक अपराध है। इसकी कानूनी व्याख्या से औरत लांछित होती है और अपराधी सिर उठा कर घूमते हैं। दहेज पर कानूनी रोक है, पर हर विवाह में लिया–दिया जाता है। न देने पर बहुएं जिंदा जला दी जाती हैं। जनसंख्या नियंत्रण ने औरत से औरतपन छिनना षुरू कर दिया। धार्मिक कट्टरता औरत को अज्ञानता में धकेल आश्रित भीख पर जिन्दा रहती दोयम दर्जे का प्राणी बनाती है। सिमोन लिखती है, 'दमनकर्ता हमेषा दूसरों की जड़ों को काटता रहता है ताकि वह बौना रह जाए। लेकिन नारी न बौनी है, न देवी, न राक्षसी, वह मानवी है सिर्फ मानवी।'

आग के दरिया में से गुजरने वाले आग से डरते नहीं, बचते भी नहीं, वो तो कुषलता से आग के गोलों से कूद कर निकल जाते हैं। वर्तमान में नारी चेतना इतनी प्रखर हो चुकी है कि घर में लगी आग को देख अपने अन्तर्जगत में डूबती नहीं, रोती चिल्लाती नहीं क्योंकि अपने को इतना अषक्त, अप्रासंगिक व हास्यास्पद बनाना उसे स्वयं अष्लील लगने लगा है।'

आज नारी अपने अस्तित्व व अस्मिता के लिये हर संभव एवं महत्त्वपूर्ण कार्य कर रही है। पुरुश प्रधान समाज में जहाँ पुरुश ने सदा स्त्रियों पर अपना प्रभुत्व चाहा है वहीं आज नारी समानता के अधिकार के लिये संघर्शरत् है। अधिकांष रूप में देखा गया है कि पुरुश नारी की बराबरी और ऊँचाई को पसंद या कहे बर्दाष्त नहीं करता है। विवाह के समय आज का षिक्षित समाज भी बराबरी, षिक्षा, योग्यता में अपने से अधिक बुद्धिमान लड़की को पसंद नहीं करता है। यह पितृसत्तात्मक सत्ता का ही तो रूप है।

जिस समाज में व्यवहारिक रूप में पूँजी का उत्तराधिकारी पुत्र ही होता है, उस समाज में स्त्री का स्थान कहां रह जाता हैं? यदि धन नहीं होगा तो वह संघर्श कैसे करेगी? ये सब चाले पितृसत्तात्मक सत्ता के पुरुशों की ही तो है। उसे आर्थिक दृश्टि से षक्तिहीन कर उस पर नियन्त्रण रखा जाता है। प्राचीन युग से ही ''जैसे–जैसे सम्पत्ति बढ़ती चली गई, वैसे–वैसे इसके कारण एक ओर तो परिवार के अन्दर नारी की तुलना में पुरुश का दर्जा ज्यादा महत्त्वपूर्ण होता गया, दूसरी ओर, पुरुश के मन में यह इच्छा ओर जोर पकड़ती गई कि अपनी मजबूत हो गई स्थिति का लाभ उठाकर उत्तराधिकार की पुरानी प्रथा को उलट दिया जाये, ताकि उसके अपने बच्चे दमदार हो सके। परन्तु जब तक मातृ अधिकार के अनुसार वषं चल रहा था, तब तक ऐसा करना असम्भव था। इसलिये आवष्यक था कि मातृ अधिकार को उलट दिया जाये और ऐसा किया भी गया।''[11]

पहले मातृसत्तात्मक परिवार थे। सम्पत्ति का अधिकार माँ के पास होता था परन्तु पुरुश ने धीरे–धीरे अपनी स्थिति को मजबूत बनाया तथा सम्पत्ति का अधिकार नारी से छीन लिया। जिससे नारी आर्थिक रुप से कमजोर हो गई, तो अब वह समाज में स्वयं को प्रतिश्ठित कैसे करे? अतः उसकी स्थिति को अनुषासित किया गया। परिणाम यह निकला कि नारी को जो षिक्षा व सामाजिक संस्कार प्राप्त हुये थे उनमें उसे बुरी तरह जकड़ दिया गया।

आधुनिक युग तक आते–आते नारी ने अपने अधिकारों के लिये संघर्श करना प्रारम्भ कर दिया। इस दिषा में भिन्न–भिन्न जगह 'नारीवादी आन्दोलनों' का बोलबाला होने लगा। जिसके माध्यम से नारी वर्ग में सषक्ता आई और उसने पुरुश प्रधान समाज की नारी–विरोधी मानसिकता को स्पश्ट किया। आज तक वह जिन पितृक नियमों को निभा रही थी। उनके प्रति उसमें एक नई सोच प्रदान कर उसे जागरूक किया। जिसमें अहं भूमिका षैक्षणिकता की है। षिक्षा द्वारा नारी की सोच विकसित हुई, वह अपनी स्वतन्त्रता व अधिकारों के लिए संघर्श करने लगी। ''स्त्री–विमर्ष ने ही स्त्रियों के भीतर यह चेतना पैदा की कि...जिसमें स्त्री मुक्ति का संदेष छिपा है।''[12]

आज नारी अपने अस्तित्व व अस्मिता के लिये संघर्श कर रही है। आर्थिक रुप से आत्मनिर्भर होकर पुरुश की अधीनता को ठुकरा रही है। पिछले दषक से स्त्रियों ने

एक नई क्रान्ति को जन्म दिया है। समाज के प्रत्येक क्षेत्र में स्त्रियों ने अपनी अहं भूमिका निभाई है। उन्होंने अपनी विलक्षण प्रतिभा–षक्ति, निश्ठा व संघर्श से पुरुशों की दुनिया को चुनौती दी है।

साठ के दषक का पष्चिमी नारीवादी आन्दोलन नारी–षोशण के विरूद्ध एक बगावती उभार था। द्वितीय विष्व युद्धोत्तर पष्चिमी उपभोक्ता संस्कृति की प्रतिक्रिया में पैदा हुई यह एक बगावत थी।...पूरी लड़ाई को पुरुश सत्ता के विरूद्ध केन्द्रित किया गया और इस सत्ता के ऐतिहासिक – सामाजिक–आर्थिक आधारों को जानने–समझने की कोई विषेश चेश्टा नहीं की गई। जाहिर है लम्बे समय तक ऐसा कोई आन्दोलन समाज में टिका नहीं रह सकता और यही हुआ।

REFERENCES

बत्रा, सुरेष, 'साहित्य में नारी मुक्ति चेतना', मधुमती, फरवरी, 1996, वर्श 36, अंक 2, पृ0 सं0 78 द्य 2तिवारी, प्रदीप : 'नारी चिन्तन की प्रासंगिक सृजनषीलता', वाराणसी : कहानीकार (पत्रिका) जनवरी–अप्रैल 2003, वर्श 34 पृ0 सं0 200 द्य 3सेठ, राजी : 'संघर्श, परिवर्तन और साहित्य', कृश्णा ब्रादर्ज, 1982, अजमेर : 'नारी मुक्ति : एक अहम् मुद्दा': सम्पादक देवेन्द्र, इस्सर और मोहन, नरेन्द्र, पृ0 सं0 35 द्य 4वर्मा, महादेवी : 'मेरे प्रिय निबन्ध', (जीने की कला), दिल्ली : नेषनल प्रकाषन हाउस, प्र0 सं0 1981, पृ0 सं0 234 द्य 5पूर्वोक्त द्य 6नैययर, रेणुका : 'नारी स्वतन्त्रता के बदलते रूप', चण्ड़ीगढ़ : अभिशेक प्रकाषन, प्र0 सं0 1984, पृ0 सं025 द्य 7नसरीन, तसलीमा : 'औरत के हक में' (अनुवादित), नई दिल्ली : वाणी प्रकाषन, प्र0 सं0 1992 द्य 8प्रभाकर, विश्णु : 'तट के बंधन' (उपन्यास) नई दिल्ली, सस्ता सहित्य मण्डल, प्रकाषन, 1995, पृ0 सं0 189 द्य 9 भटनागर, राजेन्द्र मोहन : 'अवधूत लोहिया, नई दिल्ली : किताब घर प्रकाषन, संस्करण 2003, पृ0 सं0 120 द्य 10पांडे, मृणाल : 'महिलाओं की आजादी कितनी हकीकत', कितना फसाना, दैनिक ट्रिब्यूषन, 6 मार्च 2001, पृ0 सं0 12 द्य 12कुमार, राकेष : नारीवादी विमर्ष, पंचकूला : आधार प्रकाषन, प्रथम संस्करण, 2001, पृ0 सं0 34 द्य